**ओ३म्**

**‘हम सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय कर धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष को सिद्ध करें।’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 मनुष्य एक विचारशील या बुद्धिमान प्राणी है। मनुष्य का बुद्धि तत्व अन्य सभी प्राणियों से विशिष्ट होने के कारण मनुष्य की स्थिति सभी प्राणियों से श्रेष्ठ व उत्तम है। अन्य प्राणियों की तरह से मनुष्य भी अन्न, फल व दुग्धादि पदार्थों का भोजन करता है, ऐसा अनेक प्राणी भी करते हैं परन्तु वह सब उनमें मनुष्य की बुद्धि की तरह से श्रेष्ठता व क्षमता न होने के कारण प्राकृतिक व स्वाभाविक ज्ञान के अनुसार ही जीवनयापन करते हुए मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। धर्म-कर्म, अच्छाई व बुराई, सेवा-सत्कार आदि का उनके लिये कोई महत्व नहीं है। उनके कर्म ईश्वर की ओर से प्रायः प्रेरित व निश्चित हैं। उन्हीं का पालन करते हुए उनका जीवन अस्त हो जाता है। मनुष्य के पास मननशील बुद्धि होने से यह विचार व मनन करता है एवं इससे इसे अपने भले व बुरे का ज्ञान होता है व हो सकता है। कई बार यह सही मार्ग चुनता है और कई बार गलत मार्ग भी चुन लेता है जिससे इसे भारी क्लेश होता है। इसका कारण मनुष्य की बुद्धि व इसके द्वारा किये गये निर्णय होते हैं। **अतः बुद्धि को ऐसा बनाना कि यह अपने सभी निर्णय सही ले सके जिससे कि इसे कभी क्लेश न हो, यही लक्ष्य स्वाध्याय से प्राप्त किया जाता है। स्वाध्याय करना जीवन में विवेक एवं बहुमूल्य मोतियों को पाना और जीवन को सुखी व श्रेयस्कर बनाना है और स्वाध्याय न करना ऐसा है कि बहुमूल्य पदार्थों व सुखों से वंचित रहना है। आईये स्वाध्याय पर और विचार करते हैं।**

 **मनुष्य शरीर में मुख्यतः पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, मन, बुद्धि व जीवात्मा हैं।** इन 10 इन्द्रियों को स्वस्थ रखने के लिए शौच, अच्छे शाकाहारी मिताहार, व्यायाम आदि की आवश्यकता है। मन सत्य से शुद्ध, पवित्र व अपने लक्ष्य को प्राप्त होता है, बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है व स्वयं को सफल बनाती है। इसी प्रकार से जीवात्मा विद्या व तप से लक्ष्य को प्राप्त कर सफल होता है। बुद्धि की उपेक्षा करके जीवन को सफल नहीं बनाया जा सकता। **जीवन को सफल बनाने के लिये इस बुद्धि को ज्ञान से सम्पन्न करने की आवश्यकता है।** बच्चे के जन्म से ही उसका ज्ञानार्जन का कार्य आरम्भ हो जाता है। माता-पिता व आस पास के अन्य बन्धु जो बोलते व क्रियायें करते हैं, उनका संस्कार बच्चे की आत्मा, मन व बुद्धि पर पड़ता है। उसका परिवेश अच्छा हो और वह अच्छी-अच्छी बातें सुने तो वह बच्चा जीवन में योग्य मनुष्य बनेगा, यह निश्चय से कहा जा सकता है। यदि उसका परिवेश व उसका श्रवण वा सुनना-सुनाना अच्छा नहीं होगा तो वह जीवन में उनसे प्रभावित होकर समुचित शारीरिक एवं बौद्धिक उन्नति नहीं कर सकेगा। अतः जीवन के विकास हेतु अच्छे परिवेश व श्रवण अथवा सत्य ज्ञान की आवश्यकता निर्विवाद है। सन्तान के प्रथम गुरू उसके माता व पिता होते हैं। उनके शब्द सुन-सुन कर वह बालक न केवल बोलना सीखता है अपितु उन बोले गये शब्दों व वाक्यों से संस्कार भी ग्रहण करता है अर्थात् वह सब उसके मन व आत्मा पर अंकित होता रहता है। वैदिक धर्म में विधान है कि जब बालक बोलना आरम्भ करता है तो माता को चाहिये कि उसे **“ओ३म्”** शब्द का उच्चारण करना सीखाये। इसके साथ ही शिशु सभी वर्णों का शुद्ध उच्चारण करे, इस पर विशेष देना चाहिये जिससे वह जीवन भर सभी शब्दों का शुद्ध उच्चारण ही करे। जब बोलना आरम्भ कर दे तो माता अपने शिशु को गायत्री मन्त्र को उसे कण्ठ करा दे और ओ३म् व गायत्री मन्त्र के अर्थ भी सीखा दे। शनैः शनैः उसकी अवस्थानुसार उसे सत्य ज्ञान से परिचित कराया जाता रहे जिससे उसमें बुरे संस्कार उत्पन्न न होने पायें।

 बालक-बालिका की अवस्था पांच वर्ष व इससे अधिक होने पर उसे पाठशाला, गुरूकुल या विद्यालय में भेजना होता है। वहां उसे अच्छी शिक्षा मिले जिनमें अन्यान्य विषयों के ज्ञान के साथ वैदिक, धार्मिक व नैतिक शिक्षा का यथावश्यकता ज्ञान भी कराया जाना आवश्यक है। आर्यसमाज के गुरूकुलों में बच्चों को वेदानुसार वैदिक संन्ध्या व अग्निहोत्र नित्य प्रति कराया जाता है जिससे उसे अच्छे संस्कार मिलते हैं। निजी, सरकारी व अन्य शिक्षण संस्थाओं के बालक व विद्यार्थी इससे वंचित रहते हैं। अतः बच्चों की शिक्षा पर उनके अभिभावकों को विशेष ध्यान देना चाहिये। यदि विद्यार्थी जीवन में ही अन्य-अन्य उपयोगी विषयों के ज्ञानार्थ उनसे सम्बन्धित पुस्तकों के स्वाध्याय के अभ्यास की आदत उनकी बनती है तो यह भावी जीवन में उनके लिए बहुत उपायोगी होती है। जिनको स्वाध्याय की आदत नहीं है उनको स्वाध्याय की आदत डालनी चाहिये। **स्वाध्याय एक प्रकार से बुद्धि का व्यायाम व योग है।** इससे बुद्धि की क्षमता का उपयोग होता है और वह ज्ञान सम्पन्न होती रहती है। निरन्तर स्वाध्याय से पढ़े गये विषयों का ज्ञान हो जाता है जिससे मनुष्य के निजी व्यक्तित्व व जीवन को तो लाभ होता ही है साथ हि इसके परिवेश के लोगों को भी लाभ होता है। **स्वाध्याय से अपने जीवन का सही मार्ग चुनने में सहायता मिलती है।** बुद्धि की विचार व चिन्तन-मनन की क्षमता में वृद्धि उत्पन्न होती है। सत्य व असत्य का विवेक करने में सहायता मिलने से वह अपने जीवन के लक्ष्य सहित उसके साधनों को भी जान सकता है। ऐसा होने पर वह उन साधनों का उपयोग व आचरण करते हुए लक्ष्य पर पहुंच कर अपने आप को सन्तुष्ट व प्रसन्न अनुभव करता है। इसके विपरीत जो व्यक्ति स्वाध्याय की उपेक्षा कर स्वादिष्ट पदार्थों के सेवन, धनोपार्जन आदि में व्यस्त रहकर सुख-सुविधा के साधनों को एकत्रित करने व धन सम्पत्ति बढ़ाने में व्यस्त रहता है, वह प्रायः अशान्त व अस्वस्थ रहता है। सभी रोग पेट की खराबी व तनाव से ही प्रायः होते हैं। इसके लिय युक्त आहार-विहार सहित संयम (ब्रह्मचर्य) व तप (पुरुषार्थ) से युक्त जीवन जीना आवश्यक है। आवश्यकता से अधिक सुविधा व भोग के साधन होने से मनुष्य का सारा समय उनके रखरखाव व उपभोग में ही बीत जाता है। उसे जीवन के लंक्ष्य का या तो पता ही नहीं चलता और यदि चलता है तो यह प्रवृत्ति रहती है कि कुछ समय बाद उनका सेवन व आचरण कर लेंगे। यह बाद में आचरण करने का समय अधिकांश मामलों में कभी आता ही नहीं है। प्रायः व्यक्ति किसी न किसी रोग का शिकार हो कर रोग शय्या पर लेटा हुआ चिन्तन कर दुःखी होता है। स्वस्थ हो जाने पर फिर वह संसार के चक्र में स्वयं को उलझा लेता है और फिर पूर्व स्थिति ही बन जाती है। अतः जीवन में जो भी मार्ग तय हो, उस पर सावधानी व सजगता से चलना चाहिये। **सत्य व कल्याण मार्ग पर चलने के लिए सुख सुविधाओं का त्याग तो करना ही होगा।** अधिक सुख व सुविधायें जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति में साधक नहीं अपितु बाधक अधिक होती है जो उसे लक्ष्य से दूर ले जाती हैं।

 **अपने अनुभव से हम यह भी कहना चाहते हैं कि स्वाध्याय का सर्वोत्तम ग्रन्थ महर्षि दयानन्द लिखित “सत्यार्थ प्रकाश” है। इस एक पुस्तक को पढ़ लेने पर प्रायः अधिकांश विषयों का ज्ञान हो जाता है। इसके बाद बहुत अधिक पुस्तकों के अध्ययन की आवश्यकता नहीं होती। यह ग्रन्थ जहां अनेकानेक विषयों का सत्य-सत्य ज्ञान करता है, वहीं यह यथार्थ मानव धर्म का भी धर्मग्रन्थ है। मनुष्य इस ग्रन्थ के स्वाध्याय को जितना अधिक अपने जीवन में स्थान देंगे और इसकी शिक्षाओं का जितना अधिक अपने आचरण में उपयोग करेंगे, इससे उतना ही अधिक लाभ होगा। इसका कारण यह है कि इसमें सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर अभी तक लगभग 1.96 अरब वर्षों का सभी ऋषि-मुनियों-ज्ञानियों-पूर्वजों का ज्ञान व अनुभव भरा हुआ है।** इसकी एक विशेषता यह भी है कि इसमें कोई भी बात पक्षपात से नहीं लिखी गई है अपितु संसार के सभी मनुष्य अधिक से अधिक सुखी व अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हों, यही इस पुस्तक का उद्देश्य है। जब आप इस पुस्तक को पढ़ेंगे तो इसके साथ ही आप को इससे जुड़े हुए अन्य ग्रन्थों का स्वाध्याय करने की प्रेरणा स्वतः मिलेगी। इससे ऐसा स्वभाव विकसित होगा कि आप सारा जीवन अन्य-अन्य उपयोगी पुस्तकों को पढ़ते रहेंगे जिससे नित्य प्रति आपका ज्ञान वृद्धि को प्राप्त होगा और आप अधिक से अधिक ज्ञान से सम्पन्न हो सकते हैं। सत्य शास्त्र **“वेद”** एवं वैदिक साहित्य में ईश्वर को सर्वज्ञ अर्थात् सर्वज्ञानमय कहा गया है। यह भी कहा गया है कि संसार में ज्ञान से बढ़कर कुछ नहीं है। यह ज्ञान की सम्पत्ति भौतिक सम्पत्ति से कहीं अधिक उपयोगी व सुखप्रद है। ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना के सफल होने पर समाधि में ईश्वर का साक्षात्कार होता है। यही जीवन का लक्ष्य है और यही सुखों व आनन्द की पराकष्ठा की स्थिति है। इसी प्रकार से संस्कृत व शास्त्रों के ज्ञान से भी मनुष्य सुखों की पराकाष्ठा के निकट पहुंच जाता है। यह स्थिति स्वाध्याय व उसके अनुरूप आचरण से प्राप्त होती है। ऐसा करते हुए मनुष्य जीवन के लक्ष्य मोक्ष को भी पा जाता है जिससे बढ़कर किसी जीवात्मा व मनुष्य के लिये अन्य कुछ प्राप्तव्य है ही नहीं।

 हम निष्पक्ष रूप से अपने अध्ययन व विवेक के आधार पर यह कहना चाहते हैं कि विगत पांच हजार वर्षों में संसार के इतिहास में महर्षि दयानन्द के समान विद्वान, स्वस्थ व सुखी मनुष्य उत्पन्न नहीं हुआ। उन्होंने समाज, देश व विश्व का जितना उपकार किया है, वह अन्य किसी पुरूष या महापुरूष ने नहीं किया। यह विस्तृत विश्लेेषण का विषय है जिसे अनेक पुस्तकों का अध्ययन कर जाना जा सकता है। यदि हम महर्षि दयानन्द के जीवन को देखते हैं तो यह उनके स्वाध्याय व सीखने की प्रवृत्ति से सम्भव हुआ दिखाई दरेता है। स्वगृह त्याग कर वह योगियों व ज्ञानियों का सम्पर्क करते रहे और उनसे जो भी ज्ञान, अनुभव व योग की क्रियायें जान व सीख सकते थे, उनका सेवन किया। जहां कहीं कोई पुस्तक मिला, उसका आद्यान्त अध्ययन ही नहीं किया अपितु उसे स्मरण करने का प्रयास किया। ऐसा करते करते सन् 1860 आ गया। तब उन्हें **आर्ष प्रज्ञा के धनी प्रज्ञाचक्षु दण्डी गुरू विरजानन्द सरस्वती** मिले जिनसे ढ़ाई वर्षों में आर्ष विद्या का अध्ययन कर वह कृतकार्य हो गये। गुरू की आज्ञा व स्वात्मप्रेरणा से उन्होंने जनकल्याण व देशोपकार का कार्य किया और अन्धकार में डूबे संसार को अपने प्रवचनों व ग्रन्थों से झकझोरा। संसार में फैले अज्ञानता व स्वार्थ के विष का पान कर उन्होंने सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों के माध्यम से सबको ज्ञान का अमृत परोसा। अज्ञानी जनता ने अपनी अज्ञानता व अपने पथप्रदर्शकों के स्वार्थवश उस अमृत को स्वीकार न कर विषयुक्त पदार्थों को अपना आध्यात्मिक भोजन बनाया हुआ है। यदि हम महर्षि दयानन्द जी के जीवन से शिक्षा लेना चाहें तो हमे निरन्तर अध्ययन व सद्ग्रन्थों के स्वाध्याय की ही शिक्षा व प्रेरणा मिलती है। इसके साथ ही स्वाध्याय के सर्वोत्तम ग्रन्थ ईश्वरीय ज्ञान **‘वेद’** व **सत्यार्थप्रकाश** ही सिद्ध होतें हैं जिनका स्वाध्याय कर व उनकी शिक्षाओं को आचरण में लाकर जीवन को सफल बनाया जा सकता है। आईये, वेदों की शिक्षा **“स्वाध्यायान्मा प्रमदः।”** और **“सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन वि राधिषि”** को जीवन का आदर्श बनाकर हम कभी वेदों के स्वाध्याय में प्रमाद न करें तथा वेदों के अध्ययन व श्रवण से जुडे़ रहें, इससे पृथक कभी न हों। इसे जीवन का आदर्श बनाकर जीवन के उद्देश्य **“धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष”** को प्राप्त कर जन्म-मरण के चक्र से होने वाले दुःख से मुक्ति को प्राप्त करें। इसके लिए वेद और वैदिक ग्रन्थों वा सत्यार्थ प्रकाश का नित्य प्रति स्वाध्याय करते हुए जीवन को सफल बनायें। ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**